गोदावरी शामराव पारुलेकर

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य

(पी.बी. गजेंद्रगढ़कर, ए.के. सरकार, के एन वांचू, केसी दास गुप्ता, एन. राजगोपाला अयंगर जे. जे.)

निवारक निरोध अधिनियम, 1950-राज्य सरकार ने आदेश रद्द कर दिया-भारत रक्षा नियमों के तहत् पुन-हिरासत-वैधता-हिरासत का आदेश पारित करने के लिए उचित प्राधिकारी-क्या संविधान के अनुच्छेद 166(3) के तहत् राज्यपाल के कार्य का आवंटन जरूरी-राज्य सरकार की संतुष्टि की हिरासत जरूरी है-हिरासत का आदेश किसे पारित करना चाहिए-अपील के लम्बित रहने के दौरान हिरासत के आदेश को रद्द करना।

अपीलार्थीगण को पहली बार 7 नवम्बर, 1962 को निवारक निरोध अधिनियम 1950 के तहत् हिरासत में लिया गया था। उस आदेश को सरकार ने रद्द कर दिया आैर अपीलार्थीगण को रिहा कर दिया गया लेकिन फिर से भारत रक्षा नियम 30 के तहत् पुनः हिरासत में लिया गया। अपीलार्थीगण को हिरासत का आदेश जेल में तामिल करवाया गया। अपीलार्थीगण ने उक्त आदेशों को धारा 491 दण्ड प्रक्रिया संहिता व संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका उच्च न्यायालय में दायर कर चुनौती दी। रिट याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी

गयी और अपीलार्थीगण उच्च न्यायालय से एक प्रमाण पत्र के तहत् इस न्यायालय में आए।

अपीलार्थीगण द्वारा उठाए गए तर्क यह थे कि उनकी हिरासत अवैध थी क्योंकि हिरासत आदेश की तामिल उन पर जेल में हुई, हिरासत का आदेश प्राधिकारी की संतुष्टि के बिना पारित किया गया था उनकी आवश्यकता के संबंध में, संतुष्टि राज्यपाल की होनी चाहिए थी ना की मंत्री की। भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम व नियम पारित होने के बाद राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 166(3) के तहत् व्यवसाय का नये सिरे से आवंटन करना चाहिए था, इससे पहले की राज्य सरकार नियम 30 के तहत् दी गई शक्ति का प्रयोग कर सके, केन्द्र सरकार को प्रतिनिधान करना चाहिए था कि हिरासत का आदेश से यह प्रकट नहीं हो रहा की आदेश पारित करते समय भारत रक्षा अधिनियम की धारा44 को ध्यान में रखा गया हो और आदेश में यह दिखाई नहीं दिया इससे राज्य सरकार को लगा की हिरासत में लेना एकमात्र तरीका है जिससे अधिनियम और नियमाेंं का उद्देश्य कार्यान्वित किया जा सके, आदेश खराब था। अपीलें खारिज की गयी।

अभिनिर्धारित: राज्य सरकार द्वारा हिरासत का आदेश पारित करना व आदेश की तामिल अपीलार्थीगण पर जेल में कराना पूरी तरह से वैध है और हिरासत को अवैध नहीं बनाता है। अपीलार्थीगण को विचाराधीन कैदी

या दोषी के रूप में हिरासत में नहीं लिया गया था, बल्कि एक निरूद्ध व्यक्ति के रूप में लिया गया था और इस कारण से रामेश्वर शाॅ और मक्खन सिंह तरसिखा का मामला मौजूदा प्रकरण में चस्पा नहीं होता है।

हिरासत आदेश को समग्र रूप से पढने पर यह स्पष्ट था कि अपीलार्थीगण को हिरासत में लेना अावश्यक था ताकि वो भारत की रक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा व सार्वजनिक व्यवस्था के प्रतिकूल कार्य नहीं कर सकें। नियम 30 में शब्द "एेसा करें" और हिरासत आदेश में शब्द "निम्नलिखित अादेश दे" के बीच कोई अंतर नहीं था।

जैसा की हिरासत आदेश में भारत की रक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने का उल्लेख है, राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित व्यवसायों के नियमों के मध्यनजर एेसा आदेश एक मंत्री की संतुष्टि पर दिया जा सकता है जो दोनों विषयों का प्रभारी हो।

भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम और नियमों के पारित होने के बाद अनुच्छेद 166(3) के तहत् राज्यपाल को व्यवसायों का नये सिरे से आवंटन करना जरूरी नहीं था। यह पर्याप्त है कि भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम और नियम जिन विषयों के संदर्भ में है उनका आवंटन सातवीं अनुसूची में दी गई तीनों सूचियों के संदर्भ में हो और यदि एेसा आवंटन पहले से ही है तो कानून बनने पर इसका फायदा उठाया जा सकता है।

भारत रक्षा नियम के नियम 30 के अनुसार शक्ति का प्रयोग केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा किया जा सकता है और इसलिए नियम 30 के तहत् शक्ति प्रयोग करने के लिए राज्य सरकार के पक्ष में प्रतिनिधान करने की आवश्यकता नहीं है।

यह सच है कि भारत रक्षा अधिनियम की धारा 44 में यह प्रावधान है कि जब आदेश अधिनियम व नियम के तहत् पारित किए जाते है तो उनमें कम से कम हस्तकक्षेप जीवन के सामान्य व्यवसाय के बाबत् करना चाहिए, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हिरासत के आदेश में प्रथम दृष्टया यह दिखना चाहिए कि राज्य सरकार ने नियम 30(1) के विभिन्न खण्ड पर विचार किया था और इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि नियम 30(1) (b) के उपयोग से ही अधिनियम एवं नियमों के उद्देश्य की पालना की जा सकती है। जब आदेश यह कहता है कि आदेश में उल्लेखित हानिकारक गतिविधियों पर लगाम लगाने के लिए हिरासत का आदेश देना जरूरी है, इसका तात्पर्य यह है कि यहीं एकमात्र तरीका था जिसे सरकार ने स्थिति से निपटने के लिए अपनाना अावश्यक समझा। यह बंदी को दिखाना है कि आदेश स्थिति की आवश्यकता से परे चला गया है और इसीलिए धारा 44 के विपरीत था।

मक्खनसिंह तरसिक्का बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1964 एस.सी.381: केशव कलपडें बनाम किंग एम्परर(1944) एफ. सी. आर. 57,

रामेश्वर शा ॅ बनाम जिला मजिस्ट्रेट बुर्दवान ए.आई.आर. 1964 एस.सी., मक्खनसिंह तारासिक्का बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1120 उल्लिखित

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार:1963 की आपराधिक अपीलें संख्या 109-111

अापराधिक आवेदन संख्या 217, 218 व 1963 का 114 में बा ॅम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 31 मई, 1963 के खिलाफ अपीलें

अपीलार्थीगण(1963 के आपराधिक आवेदन संख्या 109 व 110 में) व्यक्तिगत रूप से उपस्थित।

अपीलार्थीगण की तरफ से जनार्द्धन शर्मा व अपीलार्थीगण उपस्थित(1963 के आपराधिक आवेदन संख्या 111 में)

प्रत्यर्थीगण की तरफ से एन. एस. बिंद्रा व आर. एच. देबर (1963 के आपराधिक आवेदन संख्या 109-111 में)

प्रत्यर्थीगण की तरफ से पुरूषोत्तम त्रिकमदास व आर. एच. देबर (1963 के आपराधिक आवेदन संख्या 110 में)

29 जनवरी, 1964। न्यायालय का फैसला वांचू जे. के द्वारा सुनाया गया।

बाॅम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाण पत्रों पर ये तीनों अपीलें कानून के सामान्य प्रश्न उठाती है और इन्हें एक साथ निपटाया जाएगा। यह अपीलें अपीलार्थीगण द्वारा भारत रक्षा नियमों(वाद में नियमों के रूप में संदर्भित) के नियम 30 के तहत् की गई उनकी हिरासत को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में धारा 491 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् पेश की गई तीन बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाआेें से उत्पन्न हुई है। आवेदनों में बड़ी संख्या में संवैधानिक प्रश्न उठाए गए थे और वो उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण के खिलाफ निर्णित किए गए। यह अपीलें 1963 में अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरूद्व पेश अपीलों के साथ सुनवाई हेतु आई है और संवैधानिक प्रश्नों का निर्णय इस न्यायालय द्वारा 2 सितम्बर, 1963 को किया गया (मक्खनसिंह तरसिक्का बनाम पंजाब राज्य)([1])। उसमें यह माना गया कि धारा 491(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् पेश किए गए आवेदन इस हद तक अक्षम थे जहां उनमें हिरासत की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि भारत रक्षा अधिनियम और नियम जो बनाए गए थे वो अनुच्छेद 14, 21, 22(4)(5) व (7) के तहत् दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते है। अपीलों में उठाए गए अन्य बिन्दुआेें पर उस समय विचार नहीं किया गया था और यह निर्देश दिया गया था कि अपीलों को कानून के अनुसार निपटाने के लिए संविधान पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखा जाना चाहिए परिणामस्वरूप

1 ए.आई. आर.(1964) एस.सी. 381

इन अपीलों को इनमें उठाए गए अन्य बिन्दुआेंं को निपटाने के लिए इस पीठ के समक्ष रखा गया है।

हालांकि इन अपीलों की सुनवाई पर राज्य की और से एक प्रारंभिक आपत्ति इस आधार पर उठाई गई है कि जिन आदेशों के तहत् अपीलार्थीगण को हिरासत में लिया गया था और जो इन अपीलों में विचाराधीन है, उन्हें राज्य सरकार द्वारा रद्द कर दिया गया था और नयें आदेश हिरासत के दे दिए गए थे और परिणामस्वरूप यह अपीलें निष्फल हो गयी थी। इस संबंध में संघीय न्यायालय द्वारा केशव कलपडे बनाम किंग एम्परर ([2]) पर निर्भर किया। उक्त मामले में बंदी को संघीय न्यायालय में अपील के लम्बित रहने के दौरान रिहा कर दिया गया था हालांकि उसकी तरफ से यह आग्रह किया गया था कि यद्यपि उसे रिहा कर दिया गया है और उसके बाद बंदी प्रत्यक्षीकरण आवेदन पर कोई आदेश नहीं दिया जा सकता, अदालत को उच्च न्यायालय के फैसले की शुद्धता पर अपनी राय सुनानी चाहिए। संघीय न्यायालय ने एेसा करने से इंकार कर दिया और अपील को इस आधार पर खारिज कर दिया कि बंदी की रिहाई के बाद अपील में कोई आदेश नहीं दिया जा सकता है। सामान्यतः, बंदी प्रत्यक्षीकरण मामलों में अपील के सुनवाई पर आने से पहले जहां हिरासत में लिए गए व्यक्ति को रिहा कर दिया गया हो वहां अपील पर निर्णय पारित करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा हालांकि मौजूदा मामले

2 134-859 एस.सी. 29

में तथ्य अलग है। मौजूदा मामले में यह हुआ कि हिरासत का आदेश जो वर्तमान अपीलों का आधार है को तकनीकी खराबी के आधार पर महाराष्ट्र सरकार द्वारा रद्द कर दिया गया है और उसी दिन हिरासत के बाबत् नये आदेश पारित किए गए और अपीलार्थीगण को जेल से रिहा होने के तुरंत बाद फिर से गिरफ्तार कर लिया गया। संघीय न्यायालय के मामले में एेसा प्रतीत होता है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति को रिहा कर दिया गया था और उस दिन उसे पुनः हिरासत में लेने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और जिसके कारण ना ही पुनः गिरफ्तार किया गया था। इन परिस्थितियों में अपीलार्थीगण द्वारा यह आग्रह किया गया है कि यद्यपि तकनीकी रूप से अपीलार्थीगण को वर्तमान अपीलों की अंतिम सुनवाई पर आने से पहले ही रिहा कर दिया गया था लेकिन वास्तव में वो अब भी हिरासत में है और उनके द्वारा पिछले आदेशों के विरूद्ध उठाए गए कानूनी बिन्दु हिरासत के नये आदेश पर भी समान रूप से लागू होगें इसीलिए यह आग्रह किया जाता है कि न्यायालय को वर्तमान अपीलों को पहले निस्तारित करना चाहिए ताकि इससे कानून का समाधान हो जाएगा और बंदी यदि हिरासत के नये आदेश के विरूद्ध धारा 491 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् नया आवेदन पेश करता है तो उस स्थिति में उसको मदद मिलेगी। आगे यह आग्रह किया गया कि अपीलार्थीगण अापातकाल समाप्त होने के बाद उनके झूठे कारावास के विरूद्ध क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए कार्यवाही करने का ईरादा रखते है और यदि एेसा दावा किया जाता है तो

उनके रास्ते में बोम्बे उच्च न्यायालय का आदेश आएगा और इसीलिए मौजूदा अपीलाें में उठाए गए कानूनी बिन्दु पर इस न्यायालय की अाधिकारिक घोषणा आनी चाहिए, भले ही जिस आदेश से वर्तमान अपीलें उठी है वो आदेश तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया गया है। हमारी राय में मौजूदा मामले की परिस्थितियां केशव तलपड़ा([3]) मामले की परिस्थितियों से भिन्न है और इस कारण से इन अपीलों में उठाए गए बिन्दु पर निर्णय न्याय के हित में होगा। हम यहां यह जोड़ना चाहते है कि इस न्यायालय को अपीलों पर निर्णय लेने के लिए रोकने वाला कुछ भी नहीं है भले ही जिस आदेश से यह अपीलें उत्पन्न हुई है वो आदेश रद्द कर दिया गया है, हालांकि आम तौर पर यह न्यायालय एेसा नहीं करेगा लेकिन जैसा कि हमने पहले से यह संकेतित किया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थीगण को अंतिम रूप से रिहा नहीं किया गया है और नियम के तहत् हिरासत के नए आदेश के तहत् अभी भी हिरासत में है, वहां अपीलों में उठाए गए बिन्दु पर निर्णय देना उचित व निष्पक्ष है। यह बिन्दु सामान्य महत्व के है और कई मामलों में उठने की संभावना है इसीलिए प्रारंभिक आपत्ति को खारिज किया जाता है।

तीनों अपीलों में तथ्य समान है और इसीलिए हम अपीलार्थीगण की और से उठाए गए बिन्दुआें से निपटने के प्रयोजनों के लिए अपील संख्या 110 के तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख कर रहे है।

---

3 [1944] एफ.सी.आर 57

अपीलार्थीगण को पहली बार 7 नवम्बर, 1962 को पुलिस आयुक्त ग्रेटर बोम्बे द्वारा 1950 के निवारक निरोध अधिनियम संख्या IV के तहत् दिए गए आदेश से गिरफ्तार किया गया तब मामले के बाबत् सरकार को सूचित किया गया। हालांकि इससे पहले चीनी आक्रमण से भारत की सुरक्षा को खतरा हो गया था और संविधान के अनुच्छेद 352 के तहत् आपातकाल घोषित कर दिया गया था। आगे 26 अक्टूबर, 1962 को भारत रक्षा अध्यादेश 1962 पारित किया गया और उसके बाद उसके तहत् नियम बनाए गए। जब मामला सरकार के सामने आया तो यह फैसला लिया गया कि 7 नवम्बर, 1962 का पुलिस आयुक्त का आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए और 10 नवम्बर को तद्नुसार आदेश दिया गया। उसी दिन सरकार ने अपीलार्थीगण को हिरासत में लेने का फैसला लिया और नियम 30 के तहत् एक आदेश पारित किया और इस आदेश में कहा गया कि अपीलार्थीगण को भारत की रक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था के रख-रखाव के संदर्भ में पूर्वाग्रहपूर्ण ढंग से कार्य करने से राेकने के लिए उन्हें हिरासत में लेना अावश्यक था और इसीलिए नियम 30 के तहत् सरकार को दी गयी प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए सरकार ने अपीलार्थीगण को हिरासत में लेने का निर्देश दिया। यह आदेश अपीलार्थीगण को जेल में तामिल करवाया गया। इसे अपीलार्थीगण ने संविधान के अनुच्छेद 226 व धारा 491 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर कर चुनौती दी, जैसा की पहले ही संकेत

दिया जा चुका है कि उच्च न्यायालय ने आवेदनों को खारिज कर दिया लेकिन अपीलार्थीगण को इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति दे दी। जैसा की पहले बताया गया है कि संवैधानिक बिन्दु इस न्यायालय द्वारा 2 सितम्बर, 1963 को तय किए गए थे और अब हम अपीलार्थीगण की ओर से उठाए गए अन्य बिन्दुआेें से चिंतित है।

पहला तर्क जो दिया गया है वो यह है कि हिरासत अवैध है क्योंकि अपीलार्थीगण को हिरासत का आदेश जब अपीलार्थीगण जेल में थे तब उन पर तामिल करवाया गया और इस संबंध में इस न्यायालय के फैसले रामेश्वर शाॅ बनाम जिला मजिस्ट्रेट बुर्दवान([4]) व मक्खनसिंह तरसिक्का बनाम पंजाब राज्य([5]) पर निर्भर किया। उन मामलों में इस न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि जहां किसी व्यक्ति को जेल में विचाराधीन कैदी के रूप में रोका गया है तो उसे निवारक निरोध अधिनियम या नियमों के तहत् हिरासत का कोई आदेश नहीं दिया जा सकता है क्योंकि एेसे मामले में प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए आवश्यक सामग्री में से एक अनिवार्य रूप से गैरहाजिर होती है। रामेश्वर शाॅ मामले में यह बताया गया था कि "इससे पहले की कोई प्राधिकारी वैध रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंच सके कि व्यक्ति को पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करने से रोकने के लिए उसकी हिरासत आवश्यक है, प्राधिकारी को इस बात से संतुष्ट होना होगा कि यदि

4 ए.आई. 1964 एस.सी. 334

5 ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1120

व्यक्ति को हिरासत में नहीं लिया गया तो वह पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करेगा और यह अनिवार्य रूप से प्रासांगिक समय पर उस व्यक्ति को कार्यवाही की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यदि कोई व्यक्ति पहले से ही हिरासत में है, तो यह तर्कसंगत रूप से कैसा माना जा सकता है कि यदि उसे हिरासत में नहीं लिया गया तो वह क्या पूर्वग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करेगा ? उस समय जब किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने का आदेश दिया जा रहा है तो यह एकस्व होना चाहिए कि यदि उक्त व्यक्ति को हिरासत में नहीं लिया गया तो पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करेगा और यह व्यवहार तब नहीं होगा जब प्राधिकारी पहले से हिरासत में लिए गए व्यक्ति से निपट रहा हो।"

उपरोक्त सिद्धांत पुनः मक्खनसिंह तरसिक्का के मामले में दोहराया गया। हालांकि उन दोनों मामलों के तथ्य और वर्तमान अपीलों के तथ्यों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। उन दोनों मामलों में निवारक निरोध अधिनियम या नियमों के तहत् दिए गए हिरासत के आदेश की तामिल उस व्यक्ति पर की गई जो जेल में निम्न दो परिस्थितियों में से एक के कारण था, अर्थात- (1) जहां वह एक विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में था और जिस अवधि के लिए वो जेल में था वह अनिश्चित थी, या (2) जहां वह एक दोषी व्यक्ति के रूप में जेल में था और उसकी सजा की अवधि अभी कुछ समय तक और चलनी थी। उन मामलों में निवारक निरोध अधिनियम या नियमों के तहत् हिरासत के आदेश की तामिल जेल में होने से इस

कारण से गैर कानूनी नहीं होगी कि आवश्यक सामग्रियों में से एक जिसके बारे में प्राधिकारी को संतुष्ट होना था वो मौजूद नहीं है अर्थात संबंधित व्यक्ति को हिरासत में लेना आवश्यक केवल उस व्यक्ति के लिए माना जा सकता है जो पहले से ही जेल में नहीं है। हालांकि, वर्तमान मामलों में, अपीलार्थीगण अनिश्चित समय के लिए विचाराधीन कैदियों के रूप में या दोषी व्यक्तियों के रूप में जिनकी सजा अभी भी कुछ समय के लिए चलनी बाकी थी, हिरासत में नहीं थे। उन्हें 7 नवम्बर, 1962 को निवारण निरोध अधिनियम के तहत् दिए गए आदेश से हिरासत में लिया गया था, जिसे अनुमोदन के लिए सरकार को भेजा गया था और यह निवारक निरोध अधिनियम की धारा 3(3) के तहत् केवल 12 दिनों तक लागू रह सकता था जब तक इस बीच इसे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित ना किया गया हो। हालांकि राज्य सरकार ने 10 नवम्बर, 1962 को निवारक निरोध अधिनियम के तहत् पुलिस आयुक्त के आदेश को रद्द करने और नियमों के तहत् स्वयं एक आदेश पारित करने का निर्णय लिया। उन परिस्थितियों में उपर उल्लेखित दो मामलों के सिद्धांत हमारी राय में लागू नहीं होगें क्योंकि अपीलार्थीगण की हिरासत राज्य सरकार की मंजूरी पर निर्भर थी। हालांकि राज्य सरकार ने 7 नवम्बर, 1962 के अादेश को रद्द करने का फैसला किया और उसकी बजाय उसी दिन नियमों के तहत् आदेश पारित करने का फैसला लिया अर्थात 10 नवम्बर, 1962 को। इन परिस्थितियों में हमारी राय में 7 नवम्बर के आदेश को रद्द कर अपीलार्थीगण को जेल से

बाहर जाने की अनुमति दिए जाने और उनके जेल से बाहर आते ही उन्हें आदेश दिनांकित 10 नवम्बर, 1962 की तामिल कराना एक खाली आैपचारिकता है। जहां हिरासत इस प्रकार की नहीं है जो रामेश्वर शाॅ([6]) और मक्खनसिंह तरसिक्का([7]) के मामले में मानी गयी और या तो निवारण निरोध अधिनियम या नियमों के तहत् है और उसकी अवधि राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर है वहां हमें एेसा कोई कारण नहीं दिखता जिससे यह माने की यदि राज्य सरकार हिरासत के पहले के आदेश को रद्द करने का निर्णय लेती है तो वो उसी दिन हिरासत का नया आदेश पारित करके बंदी जो जेल में है उस पर तामिल नहीं करवा सकती, क्योंकि दोनों आदेश वास्तव में एक ही प्रकृति के है और एक ही उद्देश्य के लिए निर्देशित है। इसके अलावा आयुक्त का आदेश दिनांकित 7 नवम्बर, 1962 राज्य सरकार की मंजूरी के अधीन था जिसके बिना वो केवल 12 दिनों के लिए लागू रहता। इन परिस्थितियों में राज्य सरकार द्वारा 10 नवम्बर को नियमों के तहत् 7 नवम्बर, 1962 के आदेश को रद्द करने का फैसला जो लिया गया वो हमारी राय में पूरी तरह से वैध था। जहां तक आदेश पारित करने का समय व उन व्यक्तियों पर जेल में तामिल कराना जो जेल में बतौर विचाराधीन कैदी के रूप में या दौषी व्यक्ति के रूप में बंद नहीं थे, बल्कि बंदी के रूप में हिरासत में लिए गए थे, इस कारण से आदेशों को उन

---

6 1964 एस. सी. 334

7 ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1120

आधारों पर चुनौती नहीं दी जा सकती जिन आधारों पर रामेश्वर शॉ([8]) और मक्खनसिंह तरसिक्का([9]) के मामलों में हिरासत के आदेश को चुनौती दी गई थी। हमारी राय में उपरोक्त दोनों मामलों के सिद्धांत एेसे मामले पर लागू नहीं किए जा सकते जहां पर हिरासत के पिछले आदेश को रद्द करने या निरस्त करने के बाद हिरासत का एक नया आदेश पारित किया जाता है इसीलिए यह तर्क कि 10 नवम्बर, 1962 को हिरासत का आदेश देना और जेल में उसकी तामिल करवाना, हिरासत को अवैध बनाता है, को खारिज किया जाना चाहिए।

अगला तर्क यह किया कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी उस प्रकार की संतुष्टि तक पहुंचने में विफल रहे जिसकी नियमाें में आवश्यकता थी। यह तर्क 10 नवम्बर, 1962 के आदेश के शब्दों पर आधारित है। नियम 10 में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया है कि राज्य सरकार, यदि किसी व्यक्ति विशेष के संबंध में संतुष्ट है कि उस व्यक्ति को किसी भी तरह से भारत की रक्षा और नागरिक सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था का रख-रखाव , विदेशी शक्तियों के साथ भारत के संबंध, भारत के किसी भी हिस्से में शांतिपूर्ण स्थिति बनाए रखना, सैन्य संचालन का कुशल संचालन या आवश्यक आपूर्ति और सेवाआें का रख-रखाव समुदाय के जीवन के लिए, के बाबत् पूर्वग्रहपूर्ण कार्य करने से रोकने की दृष्टि से

8 ए.आई. आर. 1964 एस.सी. 334

9 ए.आई. आर. 1964 एस.सी. 1120

हिरासत में लेना आवश्यक है तो हिरासत में लेने का आदेश दे सकते है। 10 नवम्बर, 1962 का आदेश निम्न शब्दों में है-

"जबकि महाराष्ट्र सरकार बाॅम्बे के श्री शामराव विष्णु पारूलेकर के नाम से जानने वाले व्यक्ति के संबंध में संतुष्ट है कि उसे भारत की रक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था का रखरखाव के लिए प्रतिकूल तरीके से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से निम्नलिखित आदेश देना आवश्यक हैः-

> "अब, इसीलिए, भारत रक्षा नियम 1962 के नियम 30 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, महाराष्ट्र सरकार यह निर्देश देती है कि उक्त श्री शामराव विष्णु पारूलेकर को हिरासत में लिया जाएं।
>
> महाराष्ट्र के राज्यपाल के नाम से व
>
> आदेशानुसार
>
> उपसचिव, महाराष्ट्र सरकार
>
> (गृह विभाग)
>
> सचिवालय बाॅम्बे,
>
> आज दिनांक 10 नवम्बर, 1962".

अपीलार्थीगण का तर्क यह है कि आदेश के पहले भाग में यह नहीं

कहा गया कि अपीलार्थीगण को हिरासत में लेना अावश्यक है। आदेश के पहले भाग में प्रयुक्त शब्द है "निम्नलिखित आदेश देना आवश्यक है" और उसके बाद दूसरे भाग में कहा गया है कि सरकार निर्देश देती है कि उक्त व्यक्ति को हिरासत में लिया जाए। हमारी राय है कि जब पहला भाग कहता है "निम्नलिखित आदेश देना आवश्यक है", तो यह वास्तव में कहता है कि "एेसा करना आवश्यक है" जो नियमों के नियम 30 की आवश्यकता है। आदेश को समग्र रूप से पढ़ने से वास्तव में आदेश यह कहता है कि व्यक्ति को भारत की रक्षा के लिए प्रतिकूल तरीके से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से हिरासत में लेना आवश्यक है, आदि। नियम 30 में शब्द "एेसा करना है" जबकि आदेश में है उन्हें "निम्नलिखित आदेश देना है।" हमारी राय में दोनाेें अभिव्यक्तियों का मतलब एक ही है और हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि इन मामलों में नियम 30 के तहत् आवश्यक संतुष्टि, आदेश देने वाले प्राधिकारी द्वारा नहीं ली गई थी।

फिर यह आग्रह किया गया है कि चूंकि राज्य सरकार राज्यपाल के समकक्ष है, इसीलिए संतुष्टि राज्यपाल की होनी चाहिए ना कि गृह मंत्री की, जैसा कि राज्य सरकार की और से दायर हलफनामे में है। इस संबंध में राज्य सरकार कामकाज के नियमों पर भरोसा करती है, जिसकी प्रति हमें उपलब्ध करा दी गई है। ये नियम संविधान के अनुच्छेद 166 के तहत् राज्यपाल द्वारा सरकार के कामकाज को अधिक सुविधाजनक तरीके से निपटाने और मंत्रियों के बीच उक्त कारोबार के आवंटन के लिए बनाया गया

है। राज्य सरकार की और से पेश हलफनामे में गृह विभाग (विशेष) को आवंटित विषयों से संबंधित व्यवसाय के नियमों की पहली अनुसूची के विषय 2(बी), प्रविष्टि(7) जो किसी राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था के रख-रखाव से जुड़ा है, निवारक हिरासत का प्रावधान करता है। सुनवाई के दौरान, हमारा ध्यान सामान्य प्रशासन विभाग को आवंटित विषयों से संबंधित व्यवसाय के नियमों की पहली अनुसूची की प्रविष्टि (44) की और से आकर्शित किया गया, जो रक्षा, विदेश मामलों या भारत की सुरक्षा से जुड़े कारणों के लिए निवारक हिरासत का प्रावधान करता है।व्यवसाय के नियमों से यह स्पष्ट है कि निवारक निरोध को दो भागों में विभाजित किया गया है और दो अलग-अलग विभागाें को आवंटित किया गया है। जहां निवारक हिरासत किसी राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव या समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाआें के रख-रखाव से जुड़े कारणों से की जाती है, इसे विषय 2 (बी) गृह विभाग को आवंटित विषय (विशेष) से जुड़ा होने के कारण प्रभारी मंत्री द्वारा निपटाया जा सकता है, लेकिन जहां निवारक हिरासत रक्षा, विदेश मामलों या भारत की सुरक्षा से जुड़े कारणों से होती है, वहां इसे सामान्य प्रशासन विभाग को आवंटित विषयों से संबंधित विषय 1 के प्रभारी मंत्री द्वारा निपटाया जा सकता है। वर्तमान मामलों में हिरासत आदेश में कहा गया है कि यह अपीलार्थीगण को भारत की रक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था के रख-रखाव के लिए हानिकारक तरीके से कार्य करने से रोकने के उद्देश्य से

बनाया गया था। चूंकि हिरासत आदेश में भारत की रक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव दोनों का उल्लेख है, एेसा आदेश केवल एक मंत्री द्वारा दिया जा सकता है जो सामान्य प्रशासन विभाग को आवंटित विषयों से संबंधित विषय 1 और गृह विभाग(विशेष) को आवंटित विषयों से संबंधित विषय 2(बी), दोनों का प्रभारी हो। राज्य की और से हलफनामे में आदेश को इस आधार पर उचित ठहराने की मांग की गई है कि यह आदेश विषय 2(बी) गृह विभाग(विशेष) को आवंटित विषयों के संबंध में, के प्रभारी गृह मंत्री द्वारा दिया गया था। हमारी राय है कि चूंकि हिरासत का आदेश भारत की रक्षा से जुड़े कारणों से भी था, इसलिए इसे विषय 2(बी), प्रविष्टि(7) के तहत् नहीं निपटाया जा सकता था, जो विषय गृह विभाग (विशेष) को आवंटित विषयों से संबंधित है और इसे एक मंत्री द्वारा निपटाया जाना था जो सामान्य प्रशासन विभाग को आवंटित विषयों से संबंधित विषय 1 और गृह विभाग (विशेष) को आवंटित विषयों से संबंधित विषय 2 (बी), दोनों का प्रभारी था। राज्य की और से दायर मूल हलफनामे में हालांकि यह स्पष्ट नहीं था कि इन आदेशों को निपटाने वाले मंत्री सामान्य प्रशासन विभाग को आवंटित विषयों के प्रभारी भी थे या नहीं, लेकिन बार में यह कहा गया था कि जिस मंत्री ने इस मामले को देखा और आदेश पारित किया, जिसके आधार पर अपीलार्थीगण को हिरासत में लिया गया था, वो ना केवल गृह विभाग (विशेष) को आवंटित विषयों से संबंधित विषय 2(बी) का प्रभारी था, बल्कि संबंधित विषय 1 सामान्य

प्रशासन विभाग को आवंटित विषय, का भी प्रभारी था। इसीलिए हमने राज्य सरकार से इस आशय का एक हलफनामा दायर करने के लिए कहा और 21 दिसम्बर, 1963 को एक हलफनामा दायर किया गया। उस हलफनामे में कहा गया कि 10 नवम्बर, 1962 का आदेश मुख्यमंत्री द्वारा पारित किया गया था जो प्रासांगिक समय पर सामान्य प्रशासन विभाग के साथ-साथ गृह विभाग (विशेष) दोनों के प्रभारी थे। हम पहले ही हिरासत के आदेश की शर्तों का उल्लेख कर चुके है। वह आदेश, आदेश के आधार के रूप में 3 कारणों को संदर्भित करता है, अर्थात, (i)भारत की रक्षा, (ii)सार्वजनिक सुरक्षा और (iii)सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना। अब भारत की रक्षा से संबंधित निवारक हिरासत का आदेश केवल सामान्य प्रशासन विभाग के प्रभारी मंत्री द्वारा व्यवसाय के नियमों के तहत् दिया जा सकता था जबकि सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव से जुड़े कारणों के लिए निवारक हिरासत का आदेश केवल गृह विभाग (विशेष) को आवंटित विषयों के प्रभारी मंत्री द्वारा ही दिया जा सकता है इसीलिए वर्तमान मामले में आदेश केवल एक मंत्री द्वारा ही दिया जा सकता है जो सामान्य प्रशासन विभाग को आवंटित विषयों और गृह विभाग (विशेष) को आवंटित विषयों, दोनों का प्रभारी था। अब दायर हलफनामे को देखते हुए एेसा प्रतीत होता है कि मुख्यमंत्री दोनों विभागों के प्रभारी थे और इन परिस्थितियों में वह, जिस आदेश को चुनौती दी गई है, उसे पारित कर सकते थे। इसीलिए इस शीर्ष के अंतर्गत विवाद विफल होना चाहिए।

अगला तर्क यह है कि भारत रक्षा अध्यादेश और उसके तहत् बनाए गए नियमों के पारित होने के बाद संविधान के अनुच्छेद 166 के तहत् राज्यपाल द्वारा आवंटन का कोई आदेश नहीं दिया गया है और इसीलिए 1 मई, 1960 के राज्यपाल के एक आदेश द्वारा लागू किए गए व्यापार के नियमों द्वारा व्यापार का भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम और नियमों के तहत् उत्पन्न होने वाली निवारक हिरासत का आवंटन मंत्री को ना कर, राज्यपाल को हिरासत का आदेश स्वयं पारित करना चाहिए था। हमारी राय है कि इस विवाद में कोई दम नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 166(2) के तहत् व्यवसाय का आवंटन उन विशेष कानूनों के संदर्भ में नहीं बनाया गया है जो आवंटन के समय लागू थे, इसे संविधान की सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों के संदर्भ में बनाया गया है, क्योंकि केन्द्र व राज्य की कार्यकारी शक्ति उन मामलों तक फैली हुई है जिनके संबंध में सांसद और राज्य की विधानमण्डल कानून बना सकते है। इसीलिए, जब व्यवसाय का आवंटन किया जाता है तो यह सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों के संदर्भ में किया जाता है और इस प्रकार व्यवसाय के नियमों में आवंटन उन सभी आकस्मिकताओं के लिए प्रदान करता है जो कार्यकारी शक्ति के प्रयोग के लिए उत्पन्न हो सकती है। ऐसा आवंटन संसद द्वारा बनाए गए कानून से पहले भी किया जा सकता है, जबकि संसद सातवीं अनुसूची की सूची 1 में दर्ज मामलों के संबंध में राज्य सरकार को शक्ति प्रदान करने वाला कानून बनाती है। इसीलिए हमारी राय में भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम

और नियम पारित होने के बाद, हिरासत में लेने की शक्ति अनुच्छेद 166(3) के तहत् राज्यपाल को आवंटित करने की आवश्यकता नहीं थीः- यह पर्याप्त होगा यदि उस विषय का आवंटन जिसके लिए भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम और नियम संदर्भित है, सातवीं अनुसूची में तीन सूचियाोें के संदर्भ में किया गया है और यदि एेसा आवंटन पहले से मौजूद है तो इसका लाभ उठाया जा सकता है, जब कानून पारित किए जाते है। निवारक निरोध, सूची 1 विषय 9 में, रक्षा, विदेशी मामलों और भारत की सुरक्षा से जुड़े कारणों के लिए और सूची III के विषय 3 में किसी राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था के रख-रखाव, समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाआोें का रख-रखाव से जुड़े कारणों के लिए प्रदान किए गए है। व्यवसाय का आवंटन अनुच्छेद 166 के तहत् सातवीं अनुसूची के तीन सूचियों की प्रविष्टियों के अनुसरण में है और जब भी इन प्रविष्टियों से संबंधित कोई कानून बनाया जाता है और राज्य सरकार को उस कानून के तहत् कार्य करने की शक्ति प्रदान की जाती है तो यह उपयोग के लिए उपलब्ध होगा। अपीलार्थीगण का तर्क है कि भारत रक्षा अध्यादेश, अधिनियम और नियमों के पारित होने के बाद अनुच्छेद 166(3) के तहत् राज्यपाल को नया आवंटन किया जाना चाहिए था, विफल होना चाहिए।

अंततः भारत रक्षा अधिनियम की धारा 40 व 44 पर निर्भर किया। धारा 40 केन्द्र सरकार को अधिनियम या नियमों के तहत् अपनी शक्तियां

केन्द्र सरकार के अधीनस्थ किसी अधिकारी या प्राधिकारी या राज्य सरकार को या राज्य सरकार के अधीनस्थ किसी अधिकारी या प्राधिकारी या अन्य किसी प्राधिकारी को सौंपने की शक्ति देती है और तर्क यह है कि इससे पहले की राज्य सरकार नियम 30 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सके, केन्द्र सरकार को प्रतिनिधान करना चाहिए। हमारी राय में यह तर्क गलत है। यह सच है कि नियम 40 केन्द्र सरकार को अधिनियम या नियमों के तहत् अपनी शक्तियां राज्य सरकार और अन्य को सौंपने का अधिकार देता है, लेकिन राज्य सरकार को नियम 30 के तहत् शक्ति के प्रयोग के लिए किसी प्रतिनिधान की आवश्यकता नहीं है क्योंकि नियम 30 में ही कहा गया है कि नियम 30 में उल्लेखित शक्तियां का प्रयोग केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा किया जा सकता है। इसीलिए नियम 30 के तहत् शक्ति के प्रयोग के संबंध में राज्य सरकार के पक्ष में कोई और प्रतिनिधान की अावश्यकता नहीं है।

आगे यह आग्रह किया गया है कि हिरासत के आदेश से यह नहीं पता चलता है कि आदेश पारित करते समय धारा 44 को ध्यान में रखा गया हो। धारा 44 में कहा गया है कि "इस अधिनियम के अनुसरण में कार्य करने वाला कोई भी प्राधिकारी या व्यक्ति जीवन के सामान्य व्यवसायाेंं और संपत्ति के आनंद में उतना ही हस्तकक्षेप करेगा जितना सार्वजनिक सुरक्षा और हित और भारत की रक्षा और नागरिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सुसंगत हो सकता है।" यह आग्रह किया गया

है कि हिरासत का आदेश आवश्यक रूप से हिरासत में लिए गए व्यक्ति के जीवन के सामान्य कामकाज में पूरी तरह से हस्तक्षेप करता है और इसलिए एेसा आदेश दिए जाने से पहले धारा 44 को ध्यान में रखना चाहिए। इसीलिए हिरासत का आदेश तब दिया जाना चाहिए जब यह अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने का एकमात्र तरीका हो, क्योंकि धारा 44 में प्रावधान है कि अधिनियम के तहत् जीवन के सामान्य व्यवसायों में यथासंभव कम हस्तक्षेप होना चाहिए। आगे तर्क यह है कि नियम 30(1) ज्यादा से ज्यादा आठ खंड प्रदान करता है जो किसी व्यक्ति के आचरण के विनियमन के लिए प्रदान करता है। खंड(बी) हिरासत से संबंधित, जो बंदी के जीवन की आजीविका में पूर्ण हस्तक्षेप के समान है, का सहारा केवल धारा 44 के मद्देनजर ही लिया जा सकता है जब यह दिखाया गया है कि हिरासत में लिए गए व्यक्ति के आचरण को विनियमित करने का कोई अन्य तरीका नहीं है जैसा कि नियम 30(1) के अन्य खंडों में प्रदान किया गया है, और जो स्थिति की आवश्यकताआेंं को पूरा करेगा। इसीलिए यह आग्रह किया गया है कि जब तक आदेश प्रथम दृष्टया यह नहीं दिखाता कि राज्य सरकार के पास अधिनियम और नियमों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एकमात्र तरीका हिरासत में लेना था, हमारी राय में इस विवाद में कोई दम नहीं है। यह सच है कि धारा 44 में प्रावधान है कि जब अधिनियम या नियमाेंं के तहत् आदेश दिए जाते हैं तो जीवन के सामान्य व्यवसायों में यथासंभव कम हस्तक्षेप होना चाहिए; लेकिन

इसका मतलब यह नहीं है कि हिरासत आदेश में प्रथम दृष्टया यह दर्शाया जाना चाहिए कि राज्य सरकार ने नियम 30(1) के विभिन्न खंडों पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि अधिनियम और नियमों के उद्देश्यों को पूरा करने का एकमात्र तरीका नियम 30(1) के खण्ड बी का उपयोग था। हमारी राय में जब आदेश कहता है कि उसमें उल्लेखित पूर्वाग्रही गतिविधियों पर लगाम लगाने के लिए हिरासत का आदेश देना आवश्यक है तो इसका मतलब है कि यहीं एकमात्र तरीका था जिसे राज्य सरकार ने स्थिति से निपटने के लिए अपनाना आवश्यक समझा। अब बंदी को यह दिखाना होगा कि आदेश स्थिति की जरूरतों से परे चला गया था और इसीलिए धारा 44 के विपरीत था। वर्तमान मामले में ऐसी कोई बात नहीं दिखाई गई है और हम इस बात से संतुष्ट है कि विचाराधीन आदेश स्थिति की जरूरतों के परे गए हो ऐसा माना नहीं जा सकता, यह मानते हुए भी कि धारा 44 अपीलार्थीगण की और से आग्रह के अनुसार अनिवार्य है, ना कि केवल निर्देशिका जैसा कि राज्य की और से आग्रह किया गया है।

इसीलिए अपीलें विफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

अपीलें खारिज।

सुश्री सोनिया बेनिवाल(RJ00421)

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुश्री सोनिया बेनिवाल (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।